VISHVA–JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2021 TO 31.12.2023)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 8, नवम्बर, 2023

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै. शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर.

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब.

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस.(I) रिटा0, शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर.

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7 / 309, डी.सी. लिंक रोड, होशियारपुर (पंजाब).

डॉ. डी. रामकृष्णन, 301, वरुण एनक्लेव, एन.आर.पी. रोड, गाँधी नगर, विजयवाड़ा,

आन्ध्रा प्रदेश-520 003

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, वी.वी.बी.आई.एस.एण्ड आई.एस. (पं. वि.पटल), साधु आश्रम, होशियारपुर.

प्रो. (डा.) ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com
vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

निर्णायकमण्डल सदस्य (Review Committee)

- प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. ललित प्रसाद गौड, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा).
- प्रो. मुकेश कुमार अरोड़ा, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, लुधियाना (पंजाब).
- प्रो. (डा.). सुधांशु कुमार षडंगी, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. (डा.). ऋतुबाला, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

ISSN 0505-7523

भारत में एक प्रति का मूल्य : १० रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एव्रं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. सुरभि महाराज	पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र	लेख	८
डॉ. सुधांशु कुमार षड़ङ्गी	प्रमुख योगोपनिषदों में प्रतिपादित योग के अष्टाङ्गों का अध्ययन	लेख	१२
डा. मृगांक मलासी	काव्यसिद्धान्तकारिका में प्रतिपादित यथार्थवाद	लेख	२०
डॉ. मोनिका नरेश	मीडिया : 'परिवेश व संस्कारों का सर्जक'	लेख	२६
सुश्री जसवन्ती	गीता सुधा मानव संजीवनी	लेख	३४
श्री शंकर लाल माहेश्वरी	शंख-महिमा	लेख	४०
शोधार्थी श्री नितिन शर्मा	मानसिक समस्या एवं श्रीमद्भगवद्गीता में समाधान	लेख	४३
पं. गिरि मोहन गुरु	गीता का कर्म योग	कविता	४९
श्री सुरेश भारती 'नादान'	ग़ज़ल		५०
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	सही राह	कहानी	५१
	संस्थान-समाचार		५३
	पुण्य-पृष्ठ		५४

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ } होश्यारपुर, कार्तिक, २०८०; नवम्बर २०२३ { संख्या-८

आरभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिम्, अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते।
असुं त आयुः पुनराभरामि, रजस्तमो मोप गा मा प्रमेष्ठाः ।।
(अ. ८,२,१)

यह (जीवन) अमृत की लड़ी है। इसे पक्का पकड़ ले। यह लड़ी बीच में टूटने न पाए। तुझे पूर्ण आयु प्राप्त हो। मैं तेरी प्राण शक्ति, तेरी जीवन शक्ति तेरे अन्दर दुबारा भर रहा हूँ। (अतः, अब) तू (मानसिक) आवरण और अंधेरे में प्रवेश मत कर, तू मौत की लपेट मैं मत पड़।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

अशोच्यान् अन्वशेचस् त्वं प्रज्ञावादांश् च भाषसे।
गतासून् अगतासूंश् च नाऽनुशोचन्ति पण्डिताः ।।
(गीता. २.११)

हे अर्जुन, तुम (एक साथ दो परस्पर विरोधी कर्म कर रहे हो। एक ओर तो तुम ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी) दार्शनिक तत्त्वों की चर्चा कर रहे हो और, (दूसरी ओर) जिनके विषय में शोक करना उचित नहीं, उनके (वियोग का विचार करके तुम) शोक (सागर) में डूबने लग गये हो। (सत्-असत् का विवेक कर सकने वाले तात्त्विक) पण्डित-जन, जो बीत चुके हैं और जो अभी जीवित हैं, उनके विषय में शोक नहीं करते।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ८
नबम्बर ,२०२३

पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र

- डॉ. सुरभि महाराज

क्रमश :-

ब्रह्म देवलोक के देवों के शरीर का वर्णन-

पांचवें देवलोक के देव गीले महुए के वर्ण वाले (सफेद) होते हैं।[1]

देवों की आयु-

ब्रह्म देवलोक के देवताओं की जघन्य आयु सात सागरोपम है और उत्कृष्ट दस सागरोपम होती है।[2]

सामानिक देवता-

ब्रह्म देवलोक के इन्द्र के साठ हजार देवता होते हैं।

आत्म रक्षक देवता-

पाँचवें स्वर्ग में दो लाख चालीस हजार आत्म रक्षक देवता होते हैं।[3]

गुरु स्थान देवता-

इस देवलोक में तेंतीस गुरु स्थान देवता निवास करते हैं।

लोक पाल देवता-

इस देवलोक में चार लोकपाल देवता होते हैं।[4]

परिषद् में देवताओं की संख्या-

देवताअें की परिषद् तीन प्रकार की होती है- १. आभ्यन्तर परिषद्, २. मध्यम परिषद्, ३. बाह्य परिषद।

१. आभ्यन्तर परिषद- इस परिषद में देवताअें की संख्या चार हजार होती है।

२. मध्यम परिषद- इस परिषद् में देवों की गणना छह हजार होती है।

३. बाह्य परिषद्- इस परिषद् में देवताओं की संख्या आठ हजार होती है।[5]

शरीर परिमाण- इस देवलोक के देवों के शरीर का परिमाण पाँच हाथ का होता है।[6]

चिह्न- पांचवें देवलोक के देव के मुकुट पर बकरे का चिह्न होता है।[7]

देवता में भोग की प्रवृत्ति-

ब्रह्म देवलोक के देवता में जब भोग की इच्छा उत्पन्न होती है तब वे पहले सौधर्म देवलोक की अपरिगृहीता देवियों (जिनकी आयु दस पल्योपम से एक समय अधिक बीस पल्योपम तक है) के विषय जनक शब्द सुनने मात्र से उनकी भोगों से सन्तुष्टि हो जाती है।[8]

६. लान्तक देवलोक और विपाक सूत्र-

पांचवें देवलोक की सीमा से आधा रज्जू अठारह रज्जू घनाकार विस्तार में, मेरूपर्वत के बराबर बीच में घनवात औंर घनोदधि के आधार पर छठा लान्तक देवलोक स्थित है। इसमें पचास

---

१. जै. त. प्र. - (अ. ऋ. जी.) पृ. 548
२. वही, पृ. १०४
३. वही, पृ. १०७
४. श्री ज्ञा.त. प्र. (पू. श्री रघु. जी म.) पृ. ९८-९९
५. जै. त. प्र. - (अ. ऋ. जी.) पृ. १०७
६. वही,
७. वही
८. वही

हजार विमान हैं, इनके विमान सात सौ योजन के ऊँचे हैं। इसमें पांच प्रतर और चार आन्तरा हैं। इस देवलोक के देवों की जघन्य आयु दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है।[९]

लान्तक देवलोक के इन्द्र के पचास हजार सामानिक देवता और दो लाख आत्मरक्षक देवता हैं। इस देवलोक के इन्द्र का दादुर चिह्न है। यह इन्द्र के मुकुट पर होता है। छठे देवलोक के देवता का शरीर परिमाण पांच हाथ का होता है।[१०]

इस देवलोक के देवों में शुक्ल लेश्या पाई जाती है और तीन दृष्टियां होती हैं- सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यर्गमथ्यादृष्टि अर्थात् मिश्रदृष्टि।[११]

इस देवलोक में तीन तरह की परिषद् होती हैं और इनमें देवों की संख्या इस प्रकार है :- १. आभ्यन्तर परिषद् में देवों की संख्या दो हजार होती है। २. मध्यम परिषद् में देवों की संख्या चार हजार होती है। ३. बाह्य परिषद् में देवों की गणना छह हजार होती है।[१२]

देवों में भोग प्रवृत्ति-

छठे देवलोक के देवों में जब भोग की इच्छा होती है तब वे दूसरे देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के भोग जनक शब्द सुनने मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं। उन अपरिगृहीता देवियों की आयु पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक से पच्चीस पल्योपम तक होती है। ये देवियां ही लान्तक देवलोक के देवों के भोग में आती हैं।[१३] विपाक सूत्र में लान्तक देवलोक में किसी भी जीव के जाने का वर्णन नहीं मिलता।

७. महाशुक्र देवलोक और विपाक सूत्र-

छठे देवलोक की सीमा पर पाव रज्जू उभर और सात रज्जू घनाकार विस्तार में मेरूपर्वत के बराबर बीच में घनवात और घनोदधि के आधार पर सातवां महाशुक्र देवलोक अवस्थित है। इस लोक का आकार पूर्ण चन्द्रमा के समान है।[१४]

प्रतर और आन्तरे- इस लोक में चार प्रतर और तीन आन्तरे हैं।

विमानों की संख्या- महाशुक्र देवलोक में विमानों की संख्या चालीस हजार है। यह विमान आठ सौ योजन ऊँचे और चौबीस सौ योजन की अंगनाई (नींव) वाले हैं।[१५]

देवों की आयु- महाशुक्र देवलोक के देवों की जघन्य आयु चौदह सागरोपम और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम की है।[१६]

देवों के शरीर का वर्ण- सातवें देवलोक के देवों के शरीर का वर्ण सफेद है।[१७]

लेश्या- महाशुक्र देवलोक के देवों में शुक्ल लेश्या होती है।[१८]

देवों में दृष्टियां- इस देवलोक में देवता तीन दृष्टियों के धारक होते हैं- १. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि, ३. मिश्रदृष्टि अर्थात् सम्यगमिथ्या-दृष्टि[१९]

---

९. जै.त.प्र. - (अ: ऋ.जी.) पृ.१०५ १०. वही
११. जीवा.भि.सू. (डा.रा.मु.) ३.३.२०। (ईं) पृ.५४९ १२. जै.त.प्र. - (अ. ऋ.जी.) पृ.१०७
१३. वही, १४. वही, पृ.१०५ १५. वही १६. वही
१७. जीव.सू. (डा.रा.मु.) ३.३.२० ।(ई) पृ.५४८ १८. वही, पृ.५४९ १९. वही

देवों के शरीर का परिमाण- सातवें देवलोक के देवताओं के शरीर का परिमाण पांच हाथ होता हैं।

सामानिक देवता- महाशुक्र देवलोक में चालीस हजार सामानिक देवता रहते हैं।[२०]

आत्मरक्षक देवता- इस देवलोक में एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवता हैं।

चिह्न- इस देवलोक के इन्द्र का अश्व चिह्न होता है।[२१]

परिषदों में देवों की संख्या- महाशुक्र देवलोक के देवताओं की तीन प्रकार की परिषद् होती है- १. आभ्यन्तर परिषद्, २. मध्यम परिषद्, ३. बाह्य परिषद्।

१. आभ्यन्तर परिषद्- महाशुक्र कल्प के देवताओं की आभ्यन्तर परिषद् में देवों की संख्या एक हजार होती है।

२. मध्यम परिषद्- मध्यम परिषद् में देवताओं की संख्या दो हजार होती है।

३. बाह्य परिषद्- बाह्य परिषद् में देवताओं की संख्या तीन हजार होती है।[२२]

देवों में काम-भोग की प्रवृत्ति-

सातवें देवलोक के देवताओं को जब काम भोग की इच्छा जागृत होती है, तब वे पहले देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के अंगोपांगों को देखने मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं। उन देवियों की आयु बीस पल्योपम से एक समय अधिक से तीस पल्योपम तक होती है। वे देवियां ही सातवें देवलोक के देवों के भोग में आती हैं।[२३]

८. सहस्रार देवलोक और विपाक सूत्र-

सातवें देवलोक की सीमा से पाव रज्जू ऊपर सात रज्जू घनाकार विस्तार में जम्बूदीप में मेरूपर्वत के बराबर बीच में घनवात और घनोदधि के आधार से, आठवां सहस्रार देवलोक अवस्थित है। इसका आकार पूर्ण चन्द्रमा के आकार के समान है। इसमें छह हजार विमान हैं, इनके विमान आठ सौ योजन ऊँचे और चौबीस योजन की नींव वाले हैं। इसमें चार प्रतर हैं। इस देवलोक के देवों की जघन्य आयु सतरह सागरोपम और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है।[२४]

सहस्रार देवलोक के इन्द्र के तीस हजार सामानिक देवता, एक लाख बीस हजार आत्म रक्षक देवता हैं। इस देवलोक के इन्द्र का गज चिह्न है। यह इन्द्र के मुकुट पर होता है। इस देवलोक के देवों के शरीर का परिमाण चार हाथ होता हैं।[२५]

आठवें देवलोक के देवों में शुक्ल लेश्या पाई जाती है और तीन दृष्टियां होती हैं- सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि।[२६]

इस देवलोक में तीन तरह की परिषद् होती हैं और इनमें देवों की संख्या इस प्रकार हैं- १. आभ्यन्तर परिषद् में देवों की संख्या पांच सौ है। २. मध्यम परिषद् में एक हजार देवता होते हैं। ३. बाह्य परिषद् में दो हजार देवता होते हैं।[२७] विपाक सूत्र में सहस्रार देवलोक में किसी भी जीव

---

१९. जीव.सू. (डा.रा.मु.) ३.३.२० ।(ई) पृ.५४९
२०. जै.त.प्र.- (अ.ऋ.जी.) पृ.१०७
२१. वही २२. वही २३. वही
२४. वही २५. वही
२६. जीवा.भि. (डा.रा.मु.) ३.३.२०१, पृ.५४९
२७. जै.त.प्र.- (अ.ऋ.जी.) पृ.१०७

के जाने का वर्णन नहीं मिलता।

९. **आणत देवलोक और विपाक सूत्र-**

आठवें देवलोक की सीमा से पाव रज्जू ऊपर बारह रज्जू घनाकार विस्तार में मेरू से दक्षिण दिशा में नौवां "आणत" देवलोक अवस्थित है। इस देवलोक का आकार आधे चन्द्रमा के समान है।[२९]

प्रतर और आन्तरे- इस लोक में चार प्रतर और तीन आन्तरे हैं।

विमानों की संख्या- आणत देवलोक के विमानों की संख्या निश्चित रूप से तो नहीं कह सकते किन्तु आरण और प्राणत दोनों देवलोकों के मिलकर चार सौ विमान है। यह विमान नौ सौ योजन ऊँचे और वीस योजन को अंगनाई (नींव) वाले हैं।[३०]

देवों की आयु- नौवें देवलोक के देवों की जघन्य आयु आठरह सागरोपम और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की है।[३१]

देवों के शरीर का वर्ण- आणत देवलोक के देवों के शरीर का वर्ण सफेद है।[३२]

लेश्या- नौंवे देवलोक के देवों में शुक्ल लेश्या होती है।[३३]

देवों में दृष्टियां- इस देवलोक के देवता तीन दृष्टियों के धारक होते हैं- १. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि, ३. मिश्रदृष्टि[३४]

देवों के शरीर का परिमाण- आणत देवलोक के देवताओं के शरीर की अवगाहना तीन हाथ की है।[३५]

सामानिक देवता- नौवें देवलोक में बीस हजार सामानिक देवता रहते हैं।

आत्मरक्षक देवता- इस देवलोक में अस्सी हजार आत्मरक्षक देवता हैं।

चिह्न- इस देवलोक के इन्द्र का सर्प चिन्ह होता है।[३६]

परिषदों में देवों की संख्या- नौवें देवलोक के देवताओं की तीन प्रकार की परिषद् होती है- १. आभ्यन्तर परिषद्, २. मध्यम परिषद्, ३. बाह्य परिषद्।

१. आरभ्यन्तर परिषद्- नौवें कल्प के देवताओं की आभ्यन्तर परिषद् में संख्या ढाई सौ होती है।

२. मध्यम परिषद्- इस देवलोक की मध्यम परिषद् में देवों की संख्या पांच सौ होती है।

३. बाह्य परिषद्- बाह्य परिषद् में देवताओं की संख्या एक हजार होती है।[३७]

- शेष भाग अगले अंक में प्रकाशित होगा।

- चन्दा जैन आश्रम, करताराम गली, वेणी प्रसाद के समाने, निकट ठाकुरद्वारा, लुधियाना।

---

२८. वही, पृ. १०८ २९. वही, पृ. १०६ ३०. वही ३१. वही
३२. जीवा. भि. (डा.रा.मु.) ३.३.२०१, पृ. ५४८ ३३. वही, पृ. ५४९ ३४. वही, ५४८
३५. वही, पृ. ५४८ ३६. जै. त. प्र. - (अ. ऋ. जी.) पृ. १०७ ३७. वही

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. ८
नबम्बर ,२०२३

प्रमुख योगोपनिषदों में प्रतिपादित योग के अष्टाङ्गों का अध्ययन

- डॉ. सुधांशु कुमार षड़ङ्गी

इस निखिल प्रपञ्च में प्रत्येक प्राणी सतत दुःखनिवृत्ति एवं सुखसम्प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयतमान रहता है। यह सुखविशेष परमपुरुषार्थ मोक्ष के रूप से स्वीकृत है, जो कि योगदार्शनिकों से कैवल्य के रूप से परिभाषित है। यद्यपि कैवल्य अथवा मोक्ष के प्राप्ति हेतु दार्शनिक परम्परा द्वारा स्वशास्त्रानुमोदित साधनों का उपदेश प्राप्त होता है तथा सम्प्रदायों में भिन्नता होने के कारण उनमें साधन भी भिन्न रूप से व्याख्यात हैं तथापि प्रत्येक सम्प्रदाय योग को कैवल्य की प्राप्ति में एक प्रमुख साधन मानता है। श्रुति भी योग की महत्ता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करती है। यह योग सिद्धान्त श्रुति-प्रतिपादित होने से अनादि है। इसमें समाज के प्रत्येक प्राणी का कल्याण निदर्शन भी दृष्टिगोचर होता है। यह न केवल मानसिक व आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु आधारस्वरूप शरीर की शुद्धिता/नीरोगता में प्रमुख कारण है, अपितु शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य हेतु भी यह एक प्रमुख साधन है, इसके प्रमाण भारतीय शास्त्रसम्प्रदाय जैसे आयुर्वेदादिशास्त्र आदि में प्राप्त होते हैं। आधुनिक विद्वानों ने भी इसकी महत्ता के अवगमन होने पर इसको ही दैनन्दिन जीवन पद्धति में एक प्रमुख साधन के रूप से स्वीकार किया है। इसका कारण है शारीरिक स्वस्थता होने पर ही मानसिक नीरोगता और मानसिक नीरोगता से ही आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति भी सम्भव है, अतः योग ही ऐसा एकमात्र साधन है, जो अनेकों अपकारों का विनाश करता हुआ प्राणीमात्र का अभीष्ट अन्तिम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति कराता है, परन्तु योगोपनिषदों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि पतञ्जलि ने जिन विकीर्ण सिद्धान्तों को संगृहीत कर निष्कर्ष रूप से योगसूत्र की रचना की है, उसमें प्रतिपादित समस्त सिद्धान्त योगोपनिषदों में प्रतिपादित योगसिद्धान्त ही हैं। योगोपनिषदों में प्रतिपादित योगविषयक समस्त सिद्धान्तों को पतञ्जलि ने सूत्ररूप से अपने सूत्रों में ग्रहण किया है।

अब प्रश्न यह है कि योग की प्राप्ति के साधन क्या हैं? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। अधुना प्रचलित योग परम्परा महर्षि पतञ्जलि की देन है और उन्होंने स्वयं भी योग की प्राचीनता को स्वीकार किया है। पूर्वप्रचलित समस्त विकीर्ण-योगसिद्धान्तों का सङ्कलन करते हुए योगसूत्र की रचना की है। पातञ्जल सरणी से भिन्न

शैवसम्प्रदाय ने भी योग की महत्ता को मानते हुए योगसाधना पर अधिक प्रकाश डाला है; परन्तु साधनों की सङ्ख्या को लेकर पतञ्जलि से भिन्न मत की पुष्टि की है। पतञ्जलि ने जहाँ तीन प्रमुख साधन तथा तीव्र साधकों के हेतु वैकल्पिक साधन का उपदेश दिया है, वहाँ पर शैवसम्प्रदाय केवल षडङ्गों का उपदेश देता है।

योग की परिभाषा-

महर्षि पतञ्जलि ने एकाग्र और निरुद्ध भूमि में होने वाले चित्तवृत्ति-निरोध को योग कहा है, जो कि पुरुष के आत्यन्तिक स्वरूपवस्थान में हेतुभूत है। आगमशास्त्रों ने जीवात्मा तथा परमात्मा के एकत्व को योग कहा है।[१] उपनिषदों में भी यही बात कही गयी है। पुरुष का अपने औपाधिक स्वरूप से मुक्त होना अथवा योगाभ्यास से परमपद ब्रह्म को प्राप्त करना अथवा ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करना, उसकी एकत्व का प्रतिपादन है। पुरुष के अपने स्वरूप में अवस्थान प्राप्त करना ही जो कैवल्य की परिभाषा दी है वही योगोपनिषदों में प्रतिपादित है। योगोपनिषदों में कहा गया है कि पुरुष जब साधनों के अनुष्ठान से उसके ऊपर आवृत्त-मलों का अपगमन हो जाता है, तब वह ब्रह्मसाधुज्य अथवा ब्रह्म ही बन जाता है। ध्यानबिन्दूपनिषद् में तो योनिस्थान के ज्ञाता को योगवित् कहा गया है, जैसे-

आधारं प्रथमचक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।
योनिस्थानं तयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते।
आधाराख्ये गुदस्थाने पङ्कजं यच्चतुर्दलम्।।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दित,
योनिमध्ये स्थितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं तथा।।
मस्तके मणिवद्भिन्नं यो जानाति स योगवित्।[२]

योगोपनिषद् योग के साधनों के निर्वचन में बहुशः संख्या में तथा साधन प्रकार में वैमत्य रखते हैं। इनके निर्वचनप्रकार को दो कोटि में स्वीकार किया है। प्रथम कोटि योगाङ्गों के निर्वचन रूप तथा द्वितीय कोटि साक्षात् योग के साधन प्रकार के रूप से। इन उपनिषदों में कुछ ६ अंङ्गों, कुछ अष्टाङ्गों को तो कुछ १५ अंङ्गों को योग के साधन माना है तथा कुछ को तारक योग, हंस योग और कुण्डलिनी योग माना है। इन भेदों में से अष्टाङ्गों का निर्वचन तथा भेद एवं सादृश्य का विवेचन ही शोधलेख का प्रमुख उद्देश्य है।

योगोपनिषद् २० हैं। इनमें से ऋग्वेद से सम्बन्धित एक है, जो नादबिन्दूपनिषद् है। कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित १० उपनिषदें हैं। जो इस प्रकार हैं- अमृतनादोपनिषद्, अमृतबिन्दूपनिषद्, क्षुरिकोपनिषद्, तेजोबिन्दूपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, योगशिखोपनिषद् और वराहोपनिषद्। शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित ४ उपनिषदें हैं, १. अद्वयतारकोनिषद्,

१. योगमेकत्वमिच्छन्ति वस्तुनोऽन्येन वस्तुना। पराख्यतन्त्र, १४/१
२. ध्यानबिन्दु, ४३.ख - ४६.क

२. त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्, ३. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, ४. हंसोपनिषद्। सामवेद से सम्बन्धित २ उपनिषदें हैं, जैसे १. दर्शनोपनिषद्, २. योगचूडामण्युपनिषद्। अथर्ववेद से सम्बन्धित ३ उपनिषदें हैं, १. पाशुपतब्रह्मोपनिषद्, २. महावाक्योपनिषद्, ३. शाण्डिल्योपनिषद्।

योगोपनिषद् में त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद्, वराहोपनिषद् तथा शाण्डिल्योपनिषद् अष्टाङ्ग योग को अङ्गीकार करते हैं। इनमें से दर्शनोपनिषद् एवं शाण्डिल्योपनिषद् केवल अष्टाङ्गों का निर्वचन करते हैं। परञ्च अन्य उपनिषद् प्रकरणवश करते हैं। जैसे- त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् ज्ञानयोग एवं कर्मयोग द्विविध योग को अङ्गीकार करता है। कहा भी है-

श्रेयोमार्गाभिनिवेश एव ज्ञानयोग।

यत्तु चित्तस्य समतमर्थे श्रेयसि बन्धनम्।।[3]

ईश्वराराधनमित्येव निष्कामकर्मानुष्ठानाभिनिवेश कर्मयोगः।

कर्मकर्त्तव्यमित्येव विहितेष्वेव कर्मसु।[4]

बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते।[5]

इस कर्मयोग हेतु अष्टाङ्गों का विधान है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में ज्ञानसहित अष्टाङ्गों का वर्णन प्राप्त होता है। इस उपनिषद् में योग के पुनः द्वैविध्य प्राप्त होता है। जैसे- तारकयोग और अमनस्कयोग, ये दोनों ही तारक योग हैं। एक पूर्व तारक/मूर्त्तितारक, द्वितीय उत्तरतारक/अमूर्त्तितारक। कहा भी गया है-

भ्रूयुगमध्यविले तेजस आविर्भाव-पूर्वतारक; तालुमूलोर्ध्वभागे महज्ज्योतिर्विद्यते - तद्दर्शनाद् अणिमादिसिद्धि - उत्तरतारक - अमनस्क।

योगतत्त्वोपनिषद् में मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा अष्टाङ्गयोग के भेद से योग के चार प्रकार माने गए हैं। मातृकादि युक्त द्वादशवर्णात्मा मन्त्रजप ही मन्त्र योग है। चित्त का लय करना लययोग है। वस्तुतः इस उपनिषद् में हठशास्त्रप्रतिपादित नाडीशुद्धि, बज्रोली, अमरौली, खेचरी आदि तीन बन्ध आदि का वर्णन प्राप्त होता है तथा हठयोग के अङ्गरूप से अष्टाङ्गों का ग्रहण किया है। वारहोपनिषद् में त्रिविध योग की कल्पना की गयी है यथा लय, मन्त्र और हठ। इनमें से हठयोग वर्णन क्रम में अष्टाङ्गों का विवरण तथा हठशास्त्र प्रतिपाद्य सिद्धान्तों का भी विस्तरशः निर्वचन प्राप्त होता है।

ये ६ उपनिषद् पातञ्जल शास्त्रोक्त अष्टाङ्गों का ग्रहण करते हैं, परन्तु उपभेदों में स्वकीय मौलिक चिन्तनों का समावेश करते हैं। जैसे शाण्डिल्योपनिषदादि प्राणायाम के निर्वचन क्रम में हठशास्त्रोक्त प्राणायाम भेदों को ग्रहण करना। अन्य अङ्गों के उपभेदों में भी यही समानता देखी जाती है। इनका क्रमशः विवेचन निम्नप्रकार से

---

३. त्रिशिखब्राह्मण, २६ ४. तत्रैव, २५ ५. तत्रैव, २६

किया गया है।

यम

यम को परिभाषित करते हुए त्रिशिख-ब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है- **देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः।**[६] प्रायः इसी परिभाषा को सभी ने स्वीकार किया है। परन्तु यम के भेद के विषय में इनमें मतभेद हैं। पतञ्जलि केवल पाँच यमों को स्वीकार करते हैं।[७] परन्तु उपनिषद्कार पञ्चाधिक ही माना है। जैसे त्रिशिखब्राह्मण में- १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. दया, ६. आर्जव, ७. क्षमा, ८. धृति, ९. मिताहार, १०. शौच इन दश यमों को स्वीकार किया गया है। दर्शनोपनिषद्, वराहोपनिषद् और शाण्डिल्योपनिषद् भी इन्हीं दशों यमों को मानते हैं। परन्तु मण्डल-ब्राह्मणोपनिषद् में १. शीतोष्णाहार-निद्राविजय, २. सर्वदा शान्ति, ३. निश्चलत्व और ४. विषयेन्द्रियनिग्रह रूप इन चार यमों को अङ्गीकार किया गया है। परन्तु योगतत्त्वोपनिषद् में यमों के भेद नहीं कहे गए हैं, केवल एक प्रमुख यमाङ्ग लघ्वाहार का वर्णन ही प्राप्त होता है।

नियम-

परमतत्त्व में सतत अनुरक्ति नियम है।[८] इसी परिभाषा को सभी ने मान है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् को छोड़कर अन्य त्रिशिख आदि उपनिषद् नियम के दश भेद माने हैं। जैसे - तप, सन्तुष्टि, आस्तिक्य, दान, हरेः आराधनं वेदान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और व्रत- ये दश नियम है।[९] दर्शानादि अन्य उपनिषद् ने इन्हीं दशों को ही माना है, परन्तु नामभेद से। जैसे दर्शनोपनिषद् में वेदान्तश्रवण के स्थान पर सिद्धान्तश्रवण का ग्रहण हुआ है। दर्शनोपनिषद् के समान ही वराहोपनिषद् तथा शाण्डिल्योपनिषद् भी इन्हीं को माना है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में ९ नियमों का स्वीकरण है, जैसे - गुरुभक्ति, सत्यमार्गानुरक्ति, सुखागतवस्त्वनुभव, सुखागतवस्त्वनुभवेन तुष्टि, निःसङ्गता, एकान्तवासो, मनोनिवृत्ति, फलानभिलाष, वैराग्यभाव।[१०] परन्तु योगतत्त्वोपनिषद् में नियमों के भेदों का वर्णन न करते हुए केवल अहिंसा को ही श्रेष्ठ नियम कहा गया है। परञ्च पातञ्जल योगसूत्र में पञ्चविध यमों को स्वीकार किया गया है।[११]

---

६. तत्रैव, २८   ७. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। यो. सू., २/३०

८. अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः। त्रिशिखब्राह्ण, २९ क

९. तपः सन्तुष्टिरास्तिक्यं दानमाराधनं हरे।
वेदान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम्।। तत्रैव, ३३.ख, २४.क

१०. गुरुभक्तिः सत्यमार्गानुरक्तिः सुखागतवस्त्वनुावः, तद्वस्त्वनुभवेन तुष्टि निः सङ्गता एकान्तवासो मनोनिवृत्तिः फलानभिलाषो वैराग्यभावश्चेति।

११. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः, यो. सू., २/३२

आसन-

त्रिशिखब्राह्मण के अनुसार समस्तवस्तुओं में उदासीनभाव को आसन कहा गया है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में तो सुखासनवृत्ति और चिरवास को आसन माना गया है। आसनों के भेद के विषय में वैमत्य देखा जाता है। व्यास के समान ही समस्त जीवजातियों के अवयवसंस्थानविशेष आसन कहे जा सकते हैं। परन्तु प्रमुख आसन, जिनके योगसाधन में आवश्यक हैं, वे भिन्न-भिन्न उपनिषदों के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। जैसे- त्रिशिखब्राह्माणोपनिषद् हठयोग की रीति से आसनों को माना है। इनके अनुसार स्वास्तिक, गोमुख, वीरासन, पद्म, बद्धपद्म, कुकुकट, उत्तानकूर्म, धनु, सिंह, भद्र, मुक्त, मत्स्य, सिद्ध आदि आसन माने गए है। वहीं दर्शनोपनिषद् के अनुसार स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त, मयूर, सुख को आसन माना गया है। योगतत्त्वोपनिषद् केवल चार प्रमुख आसनों की स्वीकृति देता है, जैसे- पद्म, सिद्ध, सिंह और भद्र। वराहोपनिषद् में ११ आसनों को ग्रहण किया गया है, जैसे- चक्र, पद्म, कूर्म, मयूर, कुकुकट, वीर, स्वस्तिक, भद्र, सिंह, मुक्त, गोमुख आदि। शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार ८ ही आसन हैं, जैसे- स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त और मयूर।

प्राणायाम-

नाडीशुद्धिपूर्वक प्राणसंयम को प्राणायाम माना गया है। इसमें समस्त जगत् की प्रतीति को मिथ्यारूपता को स्वीकार किया गया है। उपनिषद्कारों ने प्राणायाम के निर्वचन में अत्यधिक वैमत्य दिखाई देता हैं। जैसे त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् में चार प्रकार की विधि से युक्त प्राणायाम माना है। जैसे- प्रथम दुष्टवायु का रेचन-पूरण-उसके अनन्तर शोधनयुक्त कुम्भक एवं तदनन्तर पुनः रेचन। दर्शनोपनिषद् रेचक, पूरक और कुम्भक के भेद से तीन प्रकार माने हैं। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् ने भी इन्हीं तीनों को माना है। परन्तु प्राणायाम की विधि में पूरक १६ मात्रात्मक, कुम्भक ६४ मात्रात्मक और रेचक ३२ मात्रात्मक माना है। योगतत्त्वोपनिषद् प्राणायाम हेतु पद्मासन का ही निधान करता है। इसमें भी उपनिषद् मण्डलब्राह्मणोपनिषद् के समान ही समानमात्रात्मक तीनों भेदों को विधिसहित स्वीकार किया गया है। वराहोपनिषद् इन तीनों को मानता तो है परन्तु प्रक्रियान्तर स्वीकार करता है। जैसे- पहले पूरक- कुम्भक- तदनन्तर रेचक-पुनः पूरक। शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार प्राणापानसमायोग प्राणायाम है, तथा इसने पूर्वोक्त ३ भेदों को माना है। यह प्राणायाम में प्रणवोपासना का निर्देश करता है। प्राणायाम के कपालशोधनप्रक्रिया भी कही गई है। इस प्राणायाम के उज्जायी, सीत्कारी तथा शीतली भेद भी स्वीकृत किए गए हैं।

प्रत्याहार-

चित्त की अन्तर्मुखीभावना को प्रत्याहार

माना गया है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार धारणा के १८ मर्मस्थलों से चित्त को प्रत्याहृत करना प्रत्याहार है। ये १८ स्थल जैसे- पादांगुष्ठ, गुल्फ, जङ्घामध्य, ऊरुमूल, ऊरुमध्य, पायु, हृदय, देहमध्य, नाभि, गलकूर्पर, तालुमूल, घ्राणमूल, चक्षुमण्डल, भ्रूमध्य, ललाट, जानु ऊर्ध्व, जानुमूल, करमूल।[१२]

दर्शनोपनिषद् के अनुसार विषयों में प्रवृत्त इन्द्रियों का बलपूर्वक आहरण करना प्रत्याहार है। जैसे-

अथवा वायुमाकृष्य स्थानात् स्थानं निरोधयेत्।
दन्तमूलात् तथा कण्ठे कण्ठादुरसि मारुतम्।
उरोदेशात् समाकृष्य नाभिदेशे निरोधयेत्।
नाभिदेशात् समाकृष्य कुण्डल्यां तु निरोधयेत्।
अथापानात् कटिद्वन्द्वे तथोरौ च सुमध्यमे।
तस्माज्जानुद्वये जङ्घे पादांगुष्ठे निरोधयेत्।
प्रत्याहारोऽयमुक्तस्तु प्रत्याहारपरैः पुरा।[१३]

प्रत्याहार के अनुष्ठान से समस्त पाप तथा भवरोग का नाश हो जाता है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में विषयों से मन का निरोध करना प्रत्याहार माना है। योगतत्त्वोपनिषद् में कुम्भक अवस्था में रहते हुए विषयों से इन्द्रियों का प्रत्याहरण को माना है। शाण्डिल्योपनिषद् भी प्रत्याहार की यही परिभाषा मानता है। उसमें प्रत्याहार के पाँच प्रकार कहे गए हैं, जैसे- १. विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां बलादाहरणं प्रत्याहारः। २. यद्यत् पश्यति तत्सर्वम् आत्मेति प्रत्याहारः। ३. नित्यविहितकर्म-फलत्यागः प्रत्याहारः। ४. सर्वविषयपराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः। ५. अष्टादशसु मर्मस्थानेषु क्रमात् धारणं प्रत्याहारः।

धारणा-

चित्त का निश्चलीभाव को धारण करना धारणा है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार विषयव्यावर्त्तनपूर्वक चैतन्य में चित्त को स्थापन करना ही धारणा है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों के विषय को आत्मा में धारण करने को धारणा कहा है। प्रायशः सभी ने धारणा के पञ्चविधत्व स्वीकार किया है, जो कि पञ्चभूतात्मक हैं। ज्ञानेन्द्रियों के विषयीभूत रसादि भी पञ्चभूतोपलक्षणक हैं। शाण्डिल्योपनिषद् में तो **'आत्मनि मनोधारणं, दहराकाशे बाह्याकाशधारणं पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाशेषु पञ्चमूर्त्तिधारणम्** कहा है। यह धारणा आगमोक्त धारणाभेद के साथ साम्य रखता है। महर्षि पतञ्जलि ने जो प्रदेशविशेष में चित्त को धारण करना कहा है, वह प्रतीत होता है कि उपनिषदोक्त १८ मर्मस्थान - ये सब पातञ्जलोक्त बाह्य और आभ्यन्तर प्रदेशविशेष हैं। इनमें चित्त को धारण करना ही है।

ध्यान- महर्षि पतञ्जलि ने प्रत्यय की एकतानता

---

१२. यद्यष्टादशभेदेषु मर्मस्थानेषु धारणा।
स्थानात् स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते। त्रिशिखब्राह्मण, २९,३०.क

१३. दर्शन, ५ ख - ९ क

को ध्यान कहा है, वह ही यहाँ पर ध्यान शब्द से अभिधेय है। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार सोऽहं रूप चिन्मात्रस्वरूपमात्र का चिन्तन ही ध्यान है। दर्शनोपनिषद् के अनुसार ध्यान ही सत्य, परं ब्रह्म तथा सर्वसंसारभेषज है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार समस्तशरीरों में चैतन्यैकतानता ध्यान है। वस्तुतः पतञ्जलि ने ध्याता और ध्येय के सदृशप्रवाह को ध्यान माना है। ध्याता केवल ध्येयाकाराकारित होकर ध्येयस्वरूपमात्र रह जाता है। पतञ्जलि ने ध्यान का कोई भेद नहीं कहा है। परन्तु अर्थतः स्थूल से सूक्ष्म की गति के कारण स्थूल ध्यान तथा सूक्ष्मध्यान के भेद से ध्यान के दो कोटि मान सकते हैं। उपनिषदों में भी ध्यान को द्वैविध्य माना गया है। जैसे-सगुणध्यान और निर्गुण ध्यान। दर्शनोपनिषद् में इनको सविशेष और निर्विशेष कहा गया है। इनमें से मूर्त्ति का ध्यान सगुण-ध्यान तथा आत्मयाथात्म्यध्यान निर्गुण-ध्यान है।

समाधि-

त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार ध्यान की विस्मृति होना समाधि कहलाता है। दर्शनोपनिषद् संवित् की प्राप्ति, परजीव के साथ ऐक्य प्राप्ति, स्वयं ही चिन्मात्रस्वरूपक होना समाधि माना है। माण्डलब्राह्मणोपनिषद् ने तो कहा है- **जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटीरहिता परमानन्दस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका भवति- समाधि।**[१४] वस्तुतः जिसको प्राप्त कर समता का प्रत्यय उदय होता है वह समाधि कहलाती है। ब्रह्माहम्, अहमेव ब्रह्म - इस प्रकारक प्रत्ययोपलब्धि के कारण समस्त प्रपञ्च को अपना स्वरूप ही मानना समाधि है। कहा भी है - **समं मन्येत यं लब्ध्वा स समाधिः प्रकीर्तितः।।**[१५]

अतः जिस उपाय से समस्त प्रपञ्च में आत्मभाव की प्राप्ति होती है, वह ही समाधि है। अमृतनादोपनिषद् के अनुसार समाधि की सिद्धि हेतु साधक विशुद्धभूमि पर संस्कृत दर्भासन के ऊपर उत्तराभिमुख होकर पद्मासनादि में बैठना चाहिए। तदनन्तर एकतरफ नासिकापुट को अंगुलि के द्वारा बन्द करके अन्य के द्वारा वायु का पूरण करते हुए मूलाधारत्रिकोण में अग्नि को धारण करते हुए प्रणव का चिन्तन करना चाहिए। उस ध्यान क्रम में स्थूल से लेकर सूक्ष्म होते हुए विराड् पुरुष का ध्यान करना चाहिए। ६९ मात्रात्मक कुम्भक में स्वरूप का ध्यान करते हुए योगी को अक्षरसाक्षात्कार हो जाता है। यहाँ पर अक्षर से तात्पर्य नामरूपात्मकरहितता है। जैसे कहा गया है-

अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च
अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च यत्।
अरेफजातमुभयोष्मवर्जितं
यदक्षरं न क्षरते कथञ्चित्।।[१६]

---

१४. मण्डलब्राह्मण, १.११ १५. तत्रैव, १६ ख १६. तत्रैव, २४

क्योंकि सम्पूर्ण जगत् नामरूपात्मक होने से प्रत्येक प्रपञ्च अभिधेय है, परन्तु समाधिसिद्धि के पश्चात् नामरूपात्मक जगत् से परे निष्प्रपञ्च ब्रह्मस्वरूपक हो जाना ही समाधि है।

अस्तु, निष्कर्षरूप से यह कह सकते हैं कि योगोपनिषदों में प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग का निर्वचन कर्मयोग की सिद्धि हेतु प्रयुक्त है। पातञ्जल शास्त्रोक्त मन्दाधिकारी हेतु उद्दिष्ट अष्टाङ्गों के साथ यद्यपि यह साम्य रखता है तथापि अष्टाङ्गों के विषय में उपनिषदों का मौलिक चिन्तन एक विलक्षण ज्ञान प्रस्तुत करता है। विशेष कर अङ्गों के उपभेदों के निर्वचन के विषय में।

- वी.वी.बी. आई एण्ड आई. एस., पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

काव्यसिद्धान्तकारिका में प्रतिपादित यथार्थवाद

- डॉ. मृगांक मलासी

संस्कृत काव्यशास्त्र संस्कृत में उपलब्ध सभी शास्त्रों की भाँति विशाल, विस्तृत एवं अखण्ड प्रवाह के सदृश निरन्तर गतिशील रहा है। आचार्य भरत से लेकर अद्यावधि मत-मतान्तरों से परिपोषित होता हुआ यह शास्त्र भारतीय विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं चिन्तन की मौलिकता का अत्यन्त सुन्दर निदर्शन रहा है। किसी भी भाषा का साहित्य लेखक के युग का प्रभाव सँजोये रहता है, इसीलिए एक भाषा में लिखे होने पर भी अलग-अलग काल के साहित्य में अलग-अलग प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। काव्यशास्त्री इन प्रवृत्तियों के सम्यक् विश्लेषण रूप शास्त्र कर्म को सम्पन्न करता है। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा के जीवत-काव्यशास्त्र में नवनवायमान स्थापनाओं के दर्शन होते हैं।

काव्यसिद्धान्तकारिका में यथार्थवाद को जानने से पूर्व ग्रन्थकार का परिचय संक्षेप में जान लेते हैं। पं. रामनरेश पाण्डेय और श्रीमती मनराजी के घर उत्तरप्रदेश में इलाहाबाद जनपद के अनुवा नाम ग्राम (जघंई) में ६ अक्टूबर १९३७ ई. के शुभ दिन प्रो. अमरनाथ पाण्डेय ने जन्म लिया। प्रो. पाण्डेय ने सन् १९५५ ई. से १९६० ई. तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अनुसन्धान कार्य किया। अल्पायु (१९६० ई.) में ही प्रो. पाण्डेय काशी विद्यापीठ, वाराणसी में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुए। ३७ वर्ष तक महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद को प्रो. पाण्डेय ने अलंकृत किया। अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद् वाराणसी ने प्रो. पाण्डेय को 'पण्डितराज' की उपाधि से विभूषित किया। आर्यावर्त विद्वत्परिषद् ने ग्रन्थकार को 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्रदान की है। प्रो. पाण्डेय ने हिन्दी, संस्कृत के साथ अंग्रेजी भाषा में भी ग्रन्थों की रचना की है। बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, शब्दविर्मश, संस्कृत-कविसमीक्षा, उपसर्गवर्ग, दशरूपकदीपिका आदि प्रमुख रचना हैं। संस्कृत काव्य 'सौन्दर्यवल्ली' के लिए 'व्यास सम्मान' से भी प्रो. अमरनाथ सम्मानित हो चुके हैं।

काव्यसिद्धान्तकारिका में ९३ कारिकाओं में समस्त काव्यशिक्षा का निरूपण किया गया है। ये कारिकाएँ सन् २००१ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'अजस्रा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हैं। इन कारिकाओं में काव्यगत सभी पक्षों के विवेचन के साथ-साथ पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों के सिद्धान्तों का भी निदर्शन हुआ है। ९३ कारिकाओं में प्रारम्भिक पाँच

कारिकाओं में काव्यसिद्धान्तकारिकाकार ने प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन किया है। इसके अतिरिक्त काव्यप्रयोजन, स्वरूप, कवि गुण, काव्यबिम्ब आदि सभी पक्षों पर चिन्तन किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने imagination (कल्पना) को महत्त्वपूर्ण बताया है। प्रो. पाण्डेय ने अपने ग्रन्थ में कविकल्पना की व्याप्ति को आरेखित किया है। काव्य में शब्द, अर्थ, भाव, भाषा, रचना-प्रक्रिया, भावाभिव्यक्ति, प्रयोजन, श्रेष्ठता, सौन्दर्य, बिम्ब-योजना, प्रतीक-विधान, सत्यदर्शन तथा लोकव्यवहारादि कल्पना के माध्यम से किस भाँति काव्य में अवतरित होते हैं, इस पर भी पर्याप्त व्याख्यान है। काव्यसर्जन-प्रक्रिया में आवश्यक अन्य समस्त तत्त्वों को विद्वान् आचार्य ने अपनी कारिकाओं में यथातथ्य उपन्यस्त किया है। दार्शनिक तत्त्वों का भी पर्याप्त अनुप्रयोग इन कारिकाओं में प्राप्त होता है।

संसार के साहित्य की धारा को जिन प्रवृत्तियों ने अत्यधिक आंदोलित किया है उनमें 'यथार्थवाद' को प्रमुख माना गया है। साहित्य एक कला है, क्योंकि कवि के मन की सजीवता से वह सतत अनुप्राणित है और वह स्थूल के आधारभूत होकर सूक्ष्म भावों की मंदाकिनी है। साहित्य समाज का वह दर्पण है, जो समाज के यथार्थ रूप का चित्रण वास्तविक रूप में करता है। समाज में जहाँ एक ओर आदर्शवाद को साहित्य विधा का प्रमुख स्त्रोत माना है, वहीं यथार्थवाद की मान्यता को भी स्वीकारा गया है।

साहित्य कला चिन्तन की भूमि पर अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में यथार्थवाद सम्बन्धी विवेचन आरम्भ हुआ, जो उन्नसवीं शताब्दी में अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचा। यूरोप यथार्थवाद के उद्भ्व और विकास का प्रमुख केन्द्र रहा है। यद्यपि अरस्तु और प्लेटो ने अनुकरण के सिद्धान्त में यथार्थ को ही प्रमुख आधार माना हे, किन्तु यथार्थवाद के सही स्वरूप का जन्म सन् १८३० की फ्रांसीसी क्रांति के बाद हुआ था। साहित्य में यथार्थवाद वैज्ञानिक आविष्कारों और वैज्ञानिक चिन्तन के साथ विकसित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में यथार्थवाद शब्द का उपयोग प्रतिक्रियात्मक संदर्भ में हुआ। साहित्य के क्षेत्र में इसकी नींव सन् १८५३ में फ्लावेर के उपन्यास 'मेडेम वोवेरी' के द्वारा रखी गई।

उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान के अपरिमित विकास के मध्य मानव-जीवन में अनेकों बदलाव आए, जिसके कारण मानव में विज्ञान के प्रति रूचि बढ़ती गई। विज्ञान तथ्यों पर आधारित होता है। वह किसी अलौकिक शक्ति की बात न करके तथ्यों द्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। वह वस्तुपरक होता है। वस्तु के प्रति उसमें भावात्मक लगाव नहीं होता। उसका दर्शन वह यथार्थ रूप में करता है। यथार्थवाद की मान्यता है कि जिस प्रकार विज्ञान का उद्देश्य सृष्टि की रचना का तथ्यातथ्य विवरण प्रस्तुत करना है, वैसे ही ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हम सृष्टि का जैसा बोध